गी ता - बो ध

महात्मा गांधी

बा
बापू
और
भाई

श्री देवदास गाधी

१९५०
सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

दो शब्द

इस पुस्तकको छापनेकी अनुमति मैंने कुछ संकोचके साथ दी है। 'बा' के नामका लेख २८ फरवरी १९४४ या उसके आस-पासकी तारीखोंके समाचार-पत्रोंमें छपा था। 'बापू' नामक लेख ५ फरवरी १९४८ को आल इंडिया रेडियो, दिल्लीसे प्रसारित हुआ था। तीसरा लेख भाईके विषयमें २२ जुलाई १९४८ या उसके आस-पासकी तारीखोंके समाचार-पत्रोंमें छपा था। उसमें भाईके नाम 'बा' के जिस खुले पत्रका उल्लेख है, उसे भी परिशिष्टमें दिया गया है।

दिल्ली
२२ फरवरी १९५०

—देवदास गांधी

विषय-सूची

———

बा

बा, बापू और भाई

बा

जन्म . अप्रैल १८६६
अवसान २२ फरवरी '४४

अतिम घडीतक भी बा को होश था। इतवारके दिन भी, जब सरकारी विज्ञप्तिमे उनकी दशा चिता-जनक बताई गई थी, वह चरम सीमापर पहुची हुई अपनी बीमारीपर विजय पानेकी विफल आशा कर रही थी। हृदयकी क्रिया मद पड जानेके कारण पिछले कुछ दिनोसे उनके गुर्दोंने काम करना बद कर दिया था और विना ज्वरके ही फेफडोकी अवस्था बिगड गई थी। रक्तचाप ७५।५२ तक उतर आया था। डाक्टरोने दौड-धूप बद कर दी थी। मै सोमवारकी शामको पहुचा। उस समय वह बडे कष्टमे थी, जिसे उनके साथकी नजरबद महिलाए ही अपनी सेवा-शुश्रूपासे थोडा-बहुत कम कर सकी। डाक्टरोकी आशाके विपरीत वह रात कट गई। वह उनके ऐहिक जीवनकी अतिम रात थी, जिसका एक-एक क्षण बा की साथिनो और बापूने सेवा करनेमें

बिताया। अर्द्ध चेतन अवस्थामे ही वह टूटे-फूटे शब्दो द्वारा, या धीरेसे सिर हिलाकर पूछे गये प्रश्नो-का उत्तर दे देती थी। एक बार जब बापू उनके पास गए तो उन्होने हाथ उठाकर पूछा, "यह कौन है?" लगभग एक घटेतक बापू उनके पास बैठे रहे, जिससे उन्हे बडी शाति मिली।

वैसे तो बापूके हाथ कापते थे, किंतु बा के पास बैठे हुए वह उनसे कितने ही साल छोटे लग रहे थे। उस दृश्यसे मुझे ३२ साल पहलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी वह घटना स्मरण हो आई जब बा तीन महीनेतक जेल काटनेके बाद वहासे तभी-तभी हड्डियोका ढाचा बनकर निकली थी। एक रेलवे स्टेशनपर जब उनकी एक परिचित यूरोपियनसे भेट हुई थी तो उसने पूछा था, "मिस्टर गाधी, क्या यह आपकी माता है?"

सबेरे बा की हालत और भी बिगड गई, पर वह शात दिखाई देती थी। सोमवारको तो वह आशाके टूटते हुए धागेका सहारा पकडे रही थी, किन्तु मगलवारको विरक्त दिखाई देने लगी थी। रोगका प्रभाव बढता जा रहा था, किंतु उनका चित्त शात और मस्तिष्क पहलेकी अपेक्षा अधिक तेजस्वी

था। सोमवारसे ही उन्होने कोई ओषधि, यहांतक कि पानी भी, लेना अस्वीकार कर दिया था, किंतु मगलकी दोपहरको उन्होने एक बूद गगाजलके लिए मुंह खोला और इससे उन्हे कुछ समयके लिए शाति मिली।

लगभग ३ बजे बा ने मुझे बुलाया और कहा, "अब मै जा रही हू। एक-न-एक दिन जाना तो है ही, फिर आज ही क्यो नही?" इस प्रकार मुझे हिम्मत बधाने लगी। मै, उनका अतिम बालक, गोया उन्हे रोके हुए था, किंतु दो-चार और मीठी तथा स्नेहभरी बाते कहकर उन्होने सबके सामने अपने-को मुझसे अलग कर लिया। उस समय उनका स्वर जितना स्पष्ट और उनके बोल जितने मीठे लगे उतने पहले कभी नही लगे थे। इसके तत्काल बाद ही वह दोनो हाथ जोडकर बिना किसीका सहारा लिए ही उठ बैठी और सिर झुकाए कई मिनटतक यथाशक्ति ऊचे-से-ऊचे स्वरमे प्रार्थना करती रही, "हे दीनदयालु, दीनानाथ, मै तेरी दया चाहती हू।" ये ही शब्द बार-बार उनके मुखसे निकलते रहे।

जब मै अपने आसू सुखाने कमरेसे बाहर आया तो पेनिसिलिन, जो कलकत्तेसे मगाई गई थी, आगाखा

महलके बरामदेमे आचुकी थी। डाक्टर उसे आजमानेके लिए इच्छुक नही थे। निमोनिया तो केवल एक सहायक लक्षण था। गुर्दोने अतिम रूपसे जो काम करना बद कर दिया था वह पेनिसिलिनसे ठीक नही हो सकता था। और फिर देर भी बहुत हो चुकी थी। फिर भी निमोनियाकी वह चमत्कारपूर्ण ओषधि मानो अनायास ही प्रयोगके लिए तैयारकी जाने लगी थी।

५ बजे के लगभग मैने बा के सामने जानेका फिर साहस बटोरा। इस बार वह मुस्कराई। यह वही मुस्कान थी जो इन ४३ वर्षोसे मुझे बहलाती आई है। पर इस समय तो वह एक मरणासन्न माकी अतिम उदासीन मुस्कान थी जो अपने बच्चेको ढाढस बधानेके लिए होठोपर आई थी। बा दूसरोके प्रति अत्यत उदार थी, किंतु मुझे औरोकी अपेक्षा अधिक प्यार करती थी। उन सब लोगोसे, जो उनके घनिष्ट सपर्कमे आए है, मै बा की ओरसे इस पक्षपातके लिए क्षमा मागता हू। बा की उस मुस्कानने एक बार फिर पेनिसिलिनकी ओर मुझे आकर्षित किया और मैने इस सबधमे डाक्टरोसे विचार-विमर्श करना अपना कर्त्तव्य समझा। वे उसे

आजमानेको तो तैयार थे, किंतु उन्होंने सफलता-की लेशमात्र भी आशा नही दिलाई।

जब बापूको पता चला कि मै बा को कष्टदायक इन्जेक्शन देनेके प्रस्तावसे सहमत हो गया तो वह मुझे समझानेके लिए अपना शामका टहलना छोडकर चले आए। बोले, "अब तुम अपनी माको अच्छा नही कर सकते, चाहे कितनी भी चमत्कारपूर्ण ओषधि क्यो न ले आओ। अगर जिद करोगे तो मै तुम्हारी बात मान तो लूँगा, लेकिन तुम बिलकुल गलतीपर हो। पिछले दो दिनसे बा ने सभी दवाए, यहातक कि पानी भी लेना मना कर दिया है। अब वह भगवानके हाथोमे है। अगर तुम चाहो तो हस्तक्षेप कर सकते हो, लेकिन मेरी सलाह इसके खिलाफ है। याद रखो कि तुम अपनी मरती हुई माको हर चौथे या छटे घटे इजेक्शनो द्वारा शारीरिक पीडा देने जा रहे हो।" मैने अधिक बहस नही की। डाक्टरोने भी चैनकी सास ली।

बापूके साथ मेरा यह मधुरतम सघर्ष समाप्त ही हुआ था कि किसीने आकर खबर दी कि बा ने बापूको पुकारा है। बापूने जाकर बा को अपने कधेके सहारे लिटा लिया और जितना भी आराम

दे सकते थे देनेकी चेष्टा की। मै दूसरे लोगोके साथ बा के चेहरेपर टकटकी लगाये सामने खडा था। मैने देखा कि उनके मुँहकी छाया गहरी हो गई है। फिर भी वह कुछ बोली और पूरे आरामके लिए अपनी बाहे सिरकी ओर उठाई।

और तभी देखते-देखते उनका अत समय आता नजर आया। कई आखोसे आसुओकी धारा एक साथ बह निकली, मगर बापू अपने आसू रोके रहे। सब लोग अर्द्धवृत्त बनाकर खडे हो गए और बा का वह प्यारा भजन गाने लगे जो उनके साथ इतने वर्षोसे गाते आए थे। दो मिनटके भीतर बा शात हो गई।

जैसा कि आगाखा जेलके एक साथीने मुझसे कहा, "बा इस प्रतीक्षामे रही कि सब लोग भोजन कर ले।" नजरबद कैम्पोमे दिनका अतिम भोजन शामको लगभग ६ बजे किया जाता है। बा की मृत्यु ७ बजकर ३५ मिनटपर हुई।

× × ×

इन पक्तियोको लिखते समय मै बा की अस्थिया लिए इलाहाबाद जा रहा हू। ये सोमवारको गगा-की धारामे प्रवाहित की जाएगी। ये माकी मुट्ठी भर हड्डिया है, जिन्हे जेलके साथियोने शुक्रवार-

को विधिपूर्वक चिताकी राखमेसे चुना था। आज मै अपनी माके साथ यात्रा कर रहा हू, यद्यपि जानता हू कि कलके बाद उनके साथ कभी यात्रा नही कर सकूँगा। बापूका यह दृढ निश्चय था कि अस्थि-विमर्जनका सस्कार सगमपर किया जाए। उन्होने मुझसे कहा था, "जो करोडो हिदू पुण्यके लिए करते है वही तुम्हारी मा भी करेगी।" उनके इस निश्चयको पूज्य मालवीयजीके तारसे और भी बल मिला था।

भस्मीका अधिकाश भाग प्रचलित रीनिके अनुसार पूनाके पास इद्रायणी नदीमे प्रवाहित कर दिया गया था। मै कह नही मकता कि वैज्ञानिक दृष्टिसे ऐमा करना कहातक उचित था और सम्भवत मै कोई दूसरा ही ढग पसद करता, कितु कोई निश्चित विकल्प न होनेके कारण प्रचलित रीतिके अनुसार ही कार्य किया गया। मेरे लिए और मेरे उन साथियोके लिए जो शुक्रवारको प्रात काल सूर्योदयसे पहले ही नदी तटपर पहुचे थे, यह एक बडा ही पवित्र और उत्कर्षकारी सस्कार था। दाहसस्कारके अगले दिन जो थोडीसी भस्मी बटोरी गई थी वह नजरबद कैम्पमे सुरक्षित रख दी गई है और उसमे काचकी

वे पाच चूडिया भी है जो चिताके साथ जलाई गई थी, किंतु बादमे साबुत पाई गई ।

× × ×

बा की बीमारी नजरबद कैम्पमे सितबर १९४२ से ही चली आ रही थी । हृदय-रोगके लक्षण सर्व-प्रथम तभी दिखाई दिए थे । इससे पूर्व उन्हे कभी इस रोगका आक्रमण नही हुआ था । यद्यपि पिछले चार या पाच वर्षसे उनका स्वास्थ्य ठीक नही चल रहा था, तथापि सितबर १९४२ मे पहली बार हृदय-रोगका आक्रमण होनेके बाद वह फिर अपना सामान्य स्वास्थ्य लाभ नही कर सकी ।

इसमे कोई अतिशयोक्ति नही कि कारावासकी यत्रणा भोगनेकी उनमे न तो शारीरिक शक्ति रह गई थी, न मानसिक क्षमता । इससे पूर्व भी वह जेल काट चुकी थी, विशेष रूपसे तब जब कि उन्हे राजकोट-के एक दूरस्थ गावमे एकात कारावासका दड मिला था और जबकि उनका स्वास्थ्य सर्वनाशके निकट पहुच गया था, किंतु यह अतिम जेल-यात्रा उनके लिए निरतर एक कठोरतम अग्निपरीक्षा बनी रही, जिसमे उनकी मानसिक और शारीरिक सहनशक्ति दोनो ही जर्जर हो गई । वह जिस वातावरणकी

अभ्यस्त थी, आगाखा महलका वातावरण उसके बिलकुल विपरीत था। काटेदार तारोके घेरो और सतरियोने तो उनकी मानसिक यत्रणाको चरम सीमा-तक पहुचा दिया। वह सेवाग्रामकी झोपडियोमे वापस जानेके लिए सदा तरसती रही। मै समझता हू कि जनताको यह रहस्य बतानेमे मै अपनी प्यारी माकी स्मृतिको किसी प्रकारकी ठेस नही पहुचा रहा हू।

अनिश्चित कालतक नजरबद रहनेकी सभावना उनकी आत्माको और भी बोझिल बनाए रही और इस ससारका कोई भी मानवी सुख उनके चित्त और आत्माको शाति नही दे सका। अपनी ही तरह नजरबद दूसरे हजारो लोगोका ध्यान करके, जिनमेसे कुछको वह अच्छी तरह जानती थी, वह और भी दुखी रहती थी और पिछले डेढ सालसे तो वह यही मूक प्रार्थना करती रही थी कि ये सब छोड दिए जाय, चाहे उनके बदले उन्हे और बापू-को सदाके लिए ही क्यो न जेलमे डाले रखा जाय।

किंतु क्या बीमारीकी उस अतिम चिताजनक अवस्थामे रिहाईसे उन्हे कोई लाभ होता? होता तो, किंतु तब, जब उन्हे उस नजरबद कैम्पमे फिरसे

स्वेच्छानुसार लौटनेकी स्वतत्रता भी दी जाती। यह बात दयालुताके पूर्ण सिद्धातका द्योतक होती, किंतु वास्तविकता यह है कि परमपिता परमेश्वर द्वारा दी गई अतिम दयालुतापूर्ण मुक्तिके अतिरिक्त उन्हे रिहाईके किसी प्रस्तावकी मनोवैज्ञानिक अनुभूतिका लाभ नही पहुचा। इसलिए मुझे यह जानकर आश्चर्य और दुख हुआ है कि भारत सरकारके अमरीका-स्थित एजेटने यह वक्तव्य दिया है कि भारत सरकारने बा को कई बार मुक्त करना चाहा, किंतु उन्होने इसमे लाभ उठानेमे इकार कर दिया। यह वक्तव्य तो उन सरकारी घोषणाओके भी विपरीत है, जो इस सबधमे भारतमे की गई है। मेरी समझमें अभी तक नही आया कि अमरीकामे इस प्रकार दूसरी तरहकी बात क्यो कही गई ?

अतमे दो शब्दोमे मै यह भी बताना चाहता हू कि इस अग्निपरीक्षाको बापूने कैसे सहन किया। स्पष्टत वह थके मालूम होते थे। उनके जीवनमे यह जो दुखद दरार पड गई है उससे वह सतप्त है, क्योकि आज वह जो कुछ भी है उसका बहुत कुछ श्रेय बा को ही है, किंतु वह एक दार्शनिककी भाति शात रहते है और अपनी भावनाओको निय-

त्रणमे रखते है, जैसी कि उनसे आशा की जाती है। उनके चारो ओर जो वातावरण था उसमे उदासी तो थी, किंतु विषाद नही था। जब मै भाइयोके साथ शुक्रवारको कैम्पसे विदा हुआ तो आसू बहानेकी बजाय बापूने अपने स्वभावके अनुसार विनोदकी ही बाते की।

बापू

जन्म २ अक्तूबर १८६९
अवसान · ३० जनवरी १९४८

आज मै आपके सामने एक अनाथकी तरह बोल रहा हू—इस भावनासे प्रेरित होकर कि मेरे ही समान जो दूसरे लोग अनाथ हुए है उन्हे भी अपने शोक और चितनमे हिस्सेदार बना सकू। जो अधकार हमपर छाया है उसने सबको समान रूपसे ग्रसित किया है और मै जानता हू कि पिछले शुक्रवारकी सध्यासे मै एकाएक अपने चारो ओर अधकार-ही-अधकारकी जो अनुभूति कर रहा हू वह अकेली मेरी ही अनुभूति नही है।

मुझमे और बापूमे पिता-पुत्रका जितना गहरा प्रेम था, इसका साक्षी तो केवल ईश्वर है। वह दिन मुझे आज याद आ रहा है जब, लगभग २० वर्षकी आयुमे, मै बापूसे अलग होकर विशेष अध्ययनके लिए काशी जा रहा था तब बापूने झट आगे बढकर बडे प्रेमसे मेरा माथा चूम लिया था। उससे पहले भी कभी उन्होने ऐसा किया हो, इसकी मुझे ठीक-ठीक याद नही।
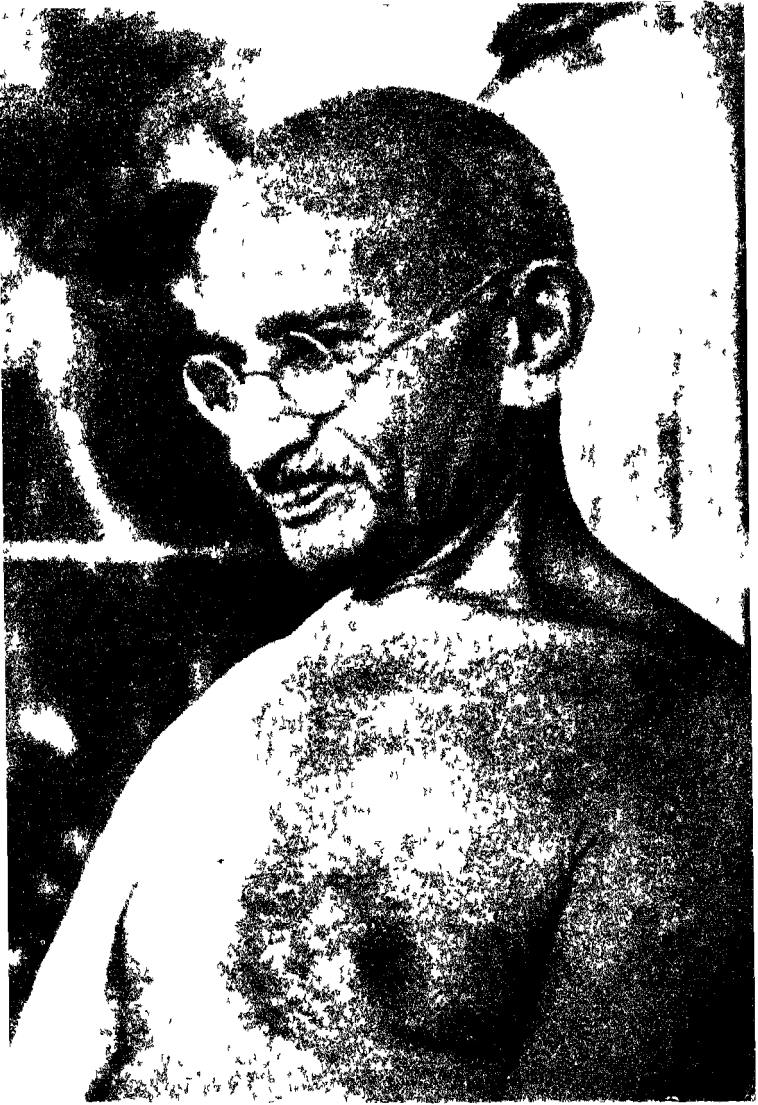
बापू

पिछले कुछ महीनोसे, जबसे कि बापू दिल्लीमे थे, उनके लाड-प्यारका केन्द्र मेरा तीन वर्षका पुत्र गोपू बना हुआ था। मै तो बिलकुल गौण बन गया था और अभी कुछ दिन हुए, एक बार बापूने मुझसे कहा भी था कि जिस दिन तुम लोग बिडला हाउस नही आते, मुझे तुमसे ज्यादा गोपूकी याद आती है। आज यह छोटा बालक जब वैसे ही मुंह बनाता है जैसा उसके दादा उसका स्वागत करते समय बनाया करते थे तो हमारी आखोसे आसू निकल पडते है।

इन सब बातोके बावजूद मै यह कहना चाहता हू कि बापू परिवारके सकीर्ण दायरेसे बहुत परे थे। यह खयाल तो मैने बहुत पहले ही छोड दिया था कि वह अकेले मेरे ही पिता है। मेरे लिए भी वह एक ऐसे ही मत थे जैसे कि मेरी आवाज सुननेवाले आपमेसे किसीके लिए, और उनके अभावको मै भी ठीक उतना ही महसूस कर रहा हू जितना आप कर रहे होगे। यही कारण है कि मै इस भयकर विपत्तिको एक ऐसे प्राणीकी तटस्थ भावनासे देखता हू जो मानो उत्तरी ध्रुवमे रहता हो और जिसका इस महापुरुषके साथ रक्त या जातिका कोई सबध

न हो। सच पूछिए तो उनकी हानिका हमे अभी धुँधला-सा ही आभास हो रहा है।

हमारे पास समवेदनाके जो हार्दिक सन्देश आ रहे है उनसे हमको बडी सान्त्वना मिल रही है। लेकिन हम मानते है कि समवेदनाके भेजनेवाले शायद हमसे भी कही अधिक दु खी और सतप्त है। कौन किसको दिलासा दे ?

जब मै बापूके पास पहुचा तो उन्हे अतिम सास लिए करीब ३० मिनट हो चुके थे। उस समयतक उनका शरीर गरम था। उनकी त्वचा तो हमेशासे ही कोमल, स्निग्ध और स्वभावत सुदर थी। जब मैने उनके हाथको धीरेसे अपने दोनो हाथोमे लिया तो ऐसा लगा मानो कुछ हुआ ही नही है, किंतु नाडी तो कभीकी लुप्त हो चुकी थी। वह तख्तपर उसी तरह लेटे हुए थे जैसे हमेशा सोया करते थे। उनका मस्तक आभाकी गोदमे था। सरदार पटेल और नेहरूजी पास ही गुमसुम बैठे थे और बहुतसे दूसरे लोग श्लोक और भजन बोलते-बोलते सिसकिया भर रहे थे। मै देरसे पहुचा था। इस बातके लिए मैने बापूके कानके पास मुँह ले जाकर रोते हुए क्षमा मागी, किंतु निष्फल! मेरी छोटी-छोटी भूले वह

इतनी बार क्षमा कर चुके थे कि मुझे आशा हुई कि इस अतिम बार भी वह मुझे क्षमा कर देगे और एक नजर मेरी ओर डालेगे, किंतु उनके होठ मजबूती-से बद थे और उनकी आखे चिर निद्रामे निमग्न थी। उनके चेहरेपर शात दृढता व्याप्त थी और ऐसा मालूम पडता था मानो वह स्वभावसे ही समयकी पाबदी न करनेवाले अपने पुत्रसे बिना कटुताके किंतु निश्चयपूर्वक कह रहे है, "अब मेरी शातिको तुम भग नही कर सकते।"

हम सारी रात जागते रहे। उनका मुखमडल इतना शात था और उनके शरीरके चारो ओर फैला हुआ दैवी प्रकाश इतना मधुर कि मृत्युका शोक करना या उससे डरना मुझे पाप-सा मालूम हुआ। यह वही तो मृत्यु थी जिसकी ओर उन्होने १३ जनवरीको अपना उपवास आरभ करते हुए 'परम-मित्र' कहकर इगित किया था।

हमारे लिए सबसे अधिक असह्य वेदनाका क्षण वह था जब हमने उनके उस अलवानको हटाया जिसे ओढे हुए वह प्रार्थना-सभामे गए थे, और जब उनके शरीरको नहलानेके लिए उनके कपडे उतारे। वैसे तो बापू अपने अल्प वस्त्रोमे सदा ही ऊचे दर्जेकी

सफाई-सुथराई रखते थे, लेकिन उस दिन वह और भी स्वच्छ और उज्ज्वल मालूम दिए। प्रार्थना-भूमिके जिस स्थलपर वह गोली खाकर गिरे थे वहाकी धूलि और घासके तिनके ऊपरकी चादरमे चिपटे हुए थे। उसे हमने बिना झाडे ही ज्यो-का-त्यो धीरे-धीरे समेट लिया। उसकी तहमे हमे एक गोली-का खोल मिला। इससे यह सिद्ध होता है कि गोली बहुत निकटसे चलाई गई थी। जिस छोटे दुपट्टेको वह छाती और कधेपर डाले रहते थे उसपर बहे हुए लहूके बडे-बडे धब्बे पडे हुए थे। जब सब कपडे हटा लिए गए और उनके शरीरपर उनकी घुटने तककी धोतीके अलावा कुछ न रह गया और हमारे सामने वह सचमुच ही एक नगे फकीरकी तरह पडे दिखाई दिये तो हम अपनेको अधिक न सभाल सके। बापूके वे घुटने, वे हाथ, वे खास तरहकी उगलिया, वे पाव, सब थे। कल्पना कीजिए कि उस शरीरको मसाला लगाकर ज्यो-का-त्यो बनाये रखनेके सुझावको न माननेमे हमे कितनी कठिनाई हुई होगी, किंतु हिंदू भावना इसकी अनुमति नही देती और यदि हम उस सुझावको मान लेते तो बापूने हमको कभी क्षमा नही किया होता।

यद्यपि समाचार-पत्रोमे सही-सही और विस्तृत विवरण छप चुका है, फिर भी बहुत-से लोगोने मुझसे पूछा है कि क्या बापूकी मृत्यु तत्काल हो गई ? बापू उस दिन प्रार्थना-भूमिमे जानेके लिए कमरेसे शामको पाच बजकर दस मिनटपर चले थे। उनके सदाके विश्वस्त साथी, जिनका सहारा लेकर वह चला करते थे, उनके साथ थे। आभा बाई ओर थी और मनु दाई ओर। उद्यानकी सीढियोपर चढते हुए बापूने कहा "आज देर हो गई है।" वह पाच बजेके बाद तक सरदार पटेलसे बाते करते रहे थे और एक मिनट भी विश्राम किये बिना प्रार्थनाके लिए चल पडे थे। ठीक उसी समय वह आदमी कहीसे आगे आया और उसके निकट बढा। मनुने यह समझकर कि औरोकी तरह वह भी बापूके सामने साष्टाग प्रणाम करना या उनके पाव छूना चाहता है, उसे हटानेकी कोशिश की, लेकिन उसने मनुका हाथ झटक दिया और तीन बार गोली चलाई। सभी गोलिया बापूको दाहिनी ओर छातीपर और छातीसे नीचे लगी। ज्योही वह नीचे गिरे, आभा भी गिर पडी और उसने उनका सिर अपनी गोदमे रख लिया। दोनो लड-कियोने उन्हे "राम-राम" कहते सुना। उसी समय

जब स्त्रियो और पुरुषोने शोकसे विह्वल होकर सिर धुनना शुरू किया, बापूके प्राण-पखेरू उड गए। मकानमे वापस ले जानेमे कोई पाच मिनट लग गए होगे और फिर अधेरा हो गया।

उस रात जब हम उस विषादसे भरे कमरेमे बापूके चारो ओर बैठे हुए थे, मै प्रार्थना-पूर्वक, किंतु बच्चो जैसा आशा लगाए रहा कि तीन घातक गोलियो-की चोट भी उनके शरीरका क्षय नही कर पाएगी और किसी-न-किसी तरह उनके प्राण सूर्योदयसे पहले-पहले लौट आएगे, किंतु जब समय निर्दयताके साथ आगे बढता गया और सृष्टिकी किसी भी वस्तुमे उनकी निद्रा भग न हुई तो मै यह कामना करने लगा कि सूर्य कभी उदय ही न हो। लेकिन थोडी देरमे फूल भीतर लाये गए और हमने अतिम यात्राके लिए शरीरको सजाना शुरू किया। मैने कहा कि छाती खुली ही रहने दी जाय। बापू-जैसी विशाल छाती किसी सैनिककी भी नही रही होगी। तब हम उनके चारो ओर बैठ गए और वे भजन और श्लोक बोलने लगे जो बापूको सबसे अधिक प्रिय थे। लोगोकी भीड रातभर आती रही और बडे सवेरे लोग बारी-बारीसे उनके दर्शन करते हुए उनपर फूलोके साथ-साथ

सिक्को और नोटोकी वर्षा करते रहे। यह थी हरि-जन-कोषके लिए बापूकी अतिम वसूली। विदेशी राजदूतोने आ-आकर अपनी पत्नियो तथा कर्मचारियो-के साथ आदरपूर्वक शीश झुकाया। यह सब कोरे शिष्टाचारसे बहुत परे था। वे एक ऐसी महान् आत्मासे विदा ले रहे थे जिनमे वे पहिले मिल चुके थे और जिन्हे वे खूब जानते थे।

एक रात पहले ही, २९जनवरी को, मुझे एक अत्यत दुर्लभ अवसर मिला था और वह था कुछ देरके लिए बापूके पास अकेले रहनेका। और दिनोकी भाति मै उस दिन उनसे मिलने रातको साढे नौ बजे गया था। वह बिस्तरपर थे और एक आश्रमवासीको वर्धाके लिए पहली गाडी पकडनेके बारेमे निर्देश दे कर ही चुके थे। मेरे अदर जाते ही उन्होने पूछा, "क्या खबर है ?" उनका यह हमेशाका तरीका था मुझे यह याद दिलानेका कि मै अखबारनवीस हू। मै भलीभाति जानता था कि इसमे मेरे लिए एक चेता-वनी है, कितु उन्होने मुझसे कभी कुछ छिपाया नही। मै उनसे जिस बारेमे भी पूछता था वह उसका सार मुझे बता दिया करते थे, लेकिन साधारणत वह बताते तभी थे जब मै उनसे पूछता था, यह मानकर

कि मैं तभी पूछूँगा जब बहुत जरूरी होगा और वह भी ऐसे कामके लिए जिसका अखबारकी खबरके साथ कोई सबध नही होगा । इन बातोमे वह मुझपर उतना ही विश्वास करते थे जितना स्वय अपनेपर ।

मेरे पास कोई समाचार देनेको नही था । अत मैंने पूछा, "हमारी सरकारकी नौकाका क्या हाल है ?" उन्होने कहा, "मुझे यकीन है कि जो थोडा-बहुत मतभेद है वह मिट जायेगा, लेकिन मेरे वर्धासे लौटने तक ठहरना होगा । इसमे ज्यादा समय नही लगेगा । सरकारमे सभी लोग देश-भक्त है और कोई भी ऐसी बात नही करेगा जो देशके हितोके विरुद्ध हो । निश्चय ही उन्हे हर हालतमे साथ-साथ रहना चाहिए और मुझे विश्वास है कि वे रहेगे । उनके बीच कोई ठोस मतभेद नही है ।"

इसी तरहकी और भी बातचीत हुई और यदि मैं कुछ देर और ठहरता तो उस समय भी वहा भीड जमा हो जाती । इसलिए मैंने उठनेके लिए तैयार होते हुए कहा, "बापू, क्या अब आप सोएगे ?"

"नही, कोई जल्दी नही है", वह बोले, "अगर तुम चाहो तो कुछ देर और बात कर सकते हो ।"

बातचीत जारी रखनेकी यह सहज अनुमति फिर दूसरे दिन नही मिल सकी।

कुछ दिन पहले जब मै रातको उनसे विदा ले रहा था तो मैने उनसे कहा कि मै प्यारेलालको अपने साथ खाना खानेके लिए ले जा रहा हू। "हा-हा, जरूर, लेकिन क्या तुम मुझे भी कभी बुलानेकी सोचते हो ?" हमेशाकी भाति खिलखिलाकर हसते हुए उन्होने कहा।

मेरे एक मित्रकी पत्नी, जिन्हे सार्वजनिक मामलोमे बहुत कम दिलचस्पी है और जो दया तथा भद्रताकी मूर्ति है, कल मुझसे थोड़ी देरके लिए विशेष रूपसे मिलने आई। उन्होने मुझसे कहा, "मै आपसे प्रार्थना करने आई हू कि आप उस आदमीको सूलीपर न लटकने दे। यह तो एक बहुत ही हल्का दड होगा। उसे भूखा रखना चाहिए जिससे कि वह तडप-तड़पकर मरे।" उनमे गभीरताके बजाय क्रोधका आवेश अधिक था। एक दूसरे व्यक्तिने मुझसे कहा, "हम उसे सता नही सकते, क्योकि हम सभ्य है। मै चाहूगा कि वह जीवित रहकर ही अपने पापकी गठरी अपनी अतरात्मापर ढोता फिरे।"

किसी भी रूपमे बदला लेनेका सवाल ही नही

उठता। क्या इससे बापू लौट सकते है ? क्या वह यह पसद करेगे कि हम रक्तकी होली खेलने लग जाय ? कदापि नही।

पिछले कुछ दिनोकी घटनाओपर दृष्टि डालनेसे ऐसा लग सकता है जैसे हम बापूकी रक्षा करनेमे असमर्थ रहे, किंतु बापू जैसे थे उसको देखते हुए क्या उनकी पूरी रक्षाका प्रबध सभव था ? उन्हे अपने ७८ वर्षके जीवनमे सिवाय परमात्माके और किसका सरक्षण मिला था ? और क्या उनको हमेशा ही खतरोके बीच नही रहना पडा ? अत हम अपने शोकके आवेगमे उन लोगोपर कर्त्तव्यकी उपेक्षा करनेका आरोप न लगाए जो हमारी ही तरह इस विपत्तिपर गहरी वेदना अनुभव कर रहे है।

मै नही मानता कि भविष्य अधकारपूर्ण है। वर्तमान निश्चय ही अधकारपूर्ण है, किंतु यदि हम उन आदर्शोके लिए यत्न करे जिनके लिए बापू जिए और मरे तो भविष्य उज्ज्वल ही होना चाहिए। इसलिए मै निराश नही हू। यह कामना करना कि बापू सदा हमारे साथ रहे, बापूको हमे लोभी कहनेका अवसर दे सकता था। अब हमे अपने ही साधनोका सहारा लेना होगा और अपने ही उद्योगपर निर्भर रहना होगा।

हरिकी इच्छापर व्यर्थ शोक प्रकट करनेमे मै समय नष्ट नही करूगा और न भावनाका ही अपव्यय करूगा। बापू परम निर्वाण पा गए। उनका शरीर तो हमारे बीच नही रह गया, किंतु उनकी आत्मा सदा हमे मार्ग दिखाती रहेगी और हमे सहायता देगी। पिछले चार महीनेके अपने दैनिक प्रवचनोमे हमे उनसे सतुलित आदेश मिले है। उनमे वह सब कुछ है जो वह हमसे कह सकते थे। हम चाहे तो आपसमे झगड सकते है और एक-दूसरेका साथ छोड सकते है, किंतु इसके विपरीत यदि हम मेल-मिलापके लिए थोडी-सी भी चेष्टा करे तो निराशाके काले बादलोको छिन्न-भिन्न कर सकते है। तब हम देखेगे कि सुनहरा प्रभात सामने ही है।

भाई

जन्म १८८०
अवसान · १८ जून १९४८

मृत्युने एक अशात आत्माको मुक्ति प्रदान की है। मेरे सबसे बडे भाई श्री हरिलालने ६० वर्षके जीवनमे कभी मानसिक अथवा शारीरिक शाति अनुभव ही नही की। उनसे मेरी अतिम भेट बापूकी हत्याके चार दिन बाद हुई थी जब मनमे पश्चातापकी भावना छिपाए वह हमारे शोकमे साथ देने न मालूम कहासे हमारे घर (दिल्ली) आ पहुचे थे। वह बीमार थे और हमने बडी सावधानीके साथ उनकी परिचर्या की। उनका चेहरा फीका और दुबला हो गया था और——जैसा कि मेरी पत्नीने कहा और छोटे गोपूने भी अपने व्यवहारसे प्रदर्शित किया——बापूसे बहुत-कुछ मिलने लगा था। कुछ स्वस्थ होते ही वह चले गए, क्योकि वह वास्तवमे हमे केवल आशीर्वाद देने आए थे, उन सस्कारोमे हस्तक्षेप करने नही, जिनमे उस समय सारी दिल्ली निमग्न थी। बबईके लिए रेलमे बैठते हुए उन्होने कहा था, "मेरे भाग्यमे तो चक्कर

काटना ही बदा है ।" उनके इन शब्दोमे एक थकान-सी थी, जो उनमे पहले कभी नही दिखाई दी थी । वह उनकी अतिम भौतिक यात्रा थी । यूरोपसे लदन लौटनेपर मुझे समाचार मिला कि बबईमे उनकी मृत्यु हो गई ।

× × ×

यद्यपि हरिलालभाईने अपने परिवारका परित्याग कर दिया था——क्योकि परिवारने भी उन्हे त्याग दिया था——और यद्यपि वह इस लबे-चौडे देशमे एक कोनेसे दूसरे कोने तक बडी ही कष्टप्रद परिस्थितियोमे भ्रमण करते रहे थे, तथापि विपदाके समय वह कभी आनेसे नही चूकते थे । पूनाके आगाखा महलके बदीगृहमे जब बा स्वर्ग सिधारी थी तब वह वहा थे । बापूके कितने ही उपवासोके सकटमय दिनोमे वह उनके साथ रहे और सन् १९२८मे जब मै दिल्लीकी जामिया मिलियामे था और मेरी गोदीमे हरिलालभाईके पुत्र रसिकने प्राण विसर्जन किये थे तब भी वह वहा पहुच लिये थे । उन्हे अपने पुत्रकी मृत्युसे बडा शोक हुआ था, किंतु उनकी जिह्वापर शिकायतका एक शब्द भी नही आया था। रसिक अपनी युवावस्थामे था और मेरी ही देखरेखमे अध्ययन कर

रहा था। न मालूम कैसे उसे टाइफायड ज्वरने ग्रस लिया। १७ वर्षकी आयुके आस-पासके टाइ-फायडका आक्रमण कितना खतरनाक होता है, यह मुझे बतानेकी आवश्यकता नही। वह जामियामे लडकोको सूत कातना सिखाता था और स्वय भी उस कलामे दक्ष था। वह सदा अपने निर्धारित अशसे अधिक सूत कात लेता था और ज्वर चढनेपर भी उसने कातना बद नही किया। आरभमे जब उसकी तबीयत भारी-भारी रहती थी तब मैने उसपर कोई विशेष ध्यान नही दिया था। यह एक ऐसी चूक थी, जिसके लिए मेरे मनमे सदा पछतावा रहा है और जिससे मुझे एक कटु किंतु सरल शिक्षा मिली है। जब रसिक बिस्तरपर पड गया तो उसने आग्रह किया कि मुझे साबरमती आश्रम वापस भेज दो, मै वहा ठीक हो जाऊगा। ऐसी बातोमे तो नियतिका छिपा हुआ हाथ निश्चित ही रहता है, और दुर्घटना हो जानेके बाद बुद्धि आनेसे कोई लाभ नही होता। फिर भी मुझे विश्वास है कि यदि मै उसे आश्रम ले गया होता तो वह बच जाता। दक्षिण अफ्रीकामे ही बापू अपनी चिकित्सासे न मालूम कितने लोगोको आश्चर्यजनक आरोग्य लाभ करा चुके थे। बीमारो-

की वह जो देखभाल करते थे उसकी समता साधारणत कोई नही कर सकता था। उनकी उपस्थिति मात्रसे रोगियोमे विश्वास और पूर्ण सुरक्षाकी भावनाका सचार हो जाता था, यद्यपि यही बात स्वस्थ लोगोके सबधमे भी कही जा सकती है। रोगियोकी देखभालके लिए बापूके साथ चाहे कितने ही सहकारी क्यो न हो, वह सबेरे-शाम उन्हे स्वय देखने जाते थे और आवश्यकता पडनेपर दिनमे भी देख आते थे। उनकी चिकित्सा-प्रणाली—विशेषकर साधारण ज्वरकी दशामे—प्राकृतिक होती थी, जिसमे अन्य बातोके अतिरिक्त खुली हवामे सोने, भीगी चादर लपेटने, कटि-स्नान कराने, धूपका सेवन कराने, फलोके रसका आहार देने, निरतर देख-भाल करने और कम-से-कम ओषधि खिलानेपर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाता था।

डाक्टर असारीने, जो जामियाके कुलपति थे, रसिकके लिए रातदिन एक कर दिया, किंतु रोगका विष इतना प्रबल था कि ठीक उस समय जब कि रोगपर विजय प्राप्त होनेवाली थी, रसिकके हृदयकी गति क्षीण हो गई। हमारे मार्गमे एक बहुत बडी बाधा थी दिल्लीकी अकडा देनेवाली दिसबरकी सर्दी। भाई

हरिलालका बडी कठिनाईसे पता लगा और वह रसिककी मृत्युसे कुछ ही समय पहले पहुचे। उनमे अपने भाइयोसे लडनेकी एक प्रवृत्ति-सी थी, किंतु ऐसे अवसरोपर नही। उन्होने अपने हीको धिक्कारा, हम सबसे नम्रतापूर्वक व्यवहार किया, डाक्टर और उसके मित्रोको धन्यवाद दिया और फिर किसी अज्ञात ठौरकी ओर चल पडे। बा को, जो उस समय वही थी, रसिककी मृत्युसे बडा आघात लगा। मेरा मस्तक झुक गया। बापूने अपने हृदयस्पर्शी तारो और पत्रोमे मुझे सात्वना दी। मुझसे भी अधिक उन्हे इस बातका विश्वास था कि यदि रसिक साबरमती आश्रम पहुचा दिया गया होता तो बच जाता, किंतु उन्होने इस बातका उल्लेखमात्र करके छोड दिया।

× × ×

मुझे अपने बचपनकी एक घटना आज भी अच्छी तरह याद है। हरिलालभाई अपने कधेपर चमडेका एक बडा-सा बेग लिये बापूसे वार्त्तामे लीन फिनिक्स स्टेशनसे घरकी ओर उनके साथ-साथ जा रहे थे। मै पीछे-पीछे चल रहा था। मै तो इस प्रकार बापूके साथ स्टेशनसे घर तक टहलते हुए जानेका आनद असख्य बार उठा चुका था। मै उनकी बाते कुछ

ठीक-ठीक समझ नही सका। हरिलालभाईने बापूके 'प्रयोगो'से भरे हुए जीवनके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और वह थोडा-सा निजी सामान लेकर चुपकेसे घर छोडकर चले गए थे । उनके इस प्रकार चले जानेसे बडी चिता उत्पन्न हो गई थी, कितु वियोगके असहनीय होनेसे पूर्व ही—विशेषकर बा के लिए—हरिलाल-भाईके एक विश्वासी मित्रने बापूको सूचना दे दी कि वह भारत जा रहे है । पूर्वी अफ्रीकाके जिस बदरगाहसे वह जहाज पकडनेवाले थे, वहाके पतेपर बापूने उनके नाम एक तार भेजा कि तुम यहा आकर स्वय बाते कर लो । मै विश्वास दिलाता हू कि उसके बाद तुम्हे अपने इच्छानुसार कार्य करनेकी पूर्ण स्वतत्रता होगी । हरिलालभाई यूरोप जाकर बैरिस्टरीकी शिक्षा पानेकी कई बार इच्छा प्रकट कर चुके थे। दक्षिण अफ्रीकामे सासारिक जीवनका परित्याग कर देनेके बाद भी बापूके पास बहुत कम पैसा बचता था और जो कुछ भी बचता था उसे उन्होने अपने परिवारके लिए नही, बल्कि समाजके हितार्थ व्यय करनेका निश्चय किया था । इसपर जब लदनमे उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिए सोराबजी अडाजनिया नामक एक पारसी नवयुवकको भेजनेका निश्चय

किया गया तो हरिलालभाईके आहत हृदयके तार पूरी तरहसे झकृत हो उठे। यह बात कि भविष्य-मे सोराबजी अपनी सारी सेवाए दक्षिण अफ्रीकाके भारतियोके हितार्थ अर्पित कर देगा, हरिलालभाई-के लिए कोई अर्थ नही रखती थी। उनके प्रस्थान-के लिए मानो यह अतिम बिगुल था। वर्षो बाद मुझे पता चला कि ऊपर मैने जिस बातचीतकी चर्चा की है उसका कोई परिणाम नही निकला और हरिलाल-भाई अपने निश्चयपर अटल रहे। यह सन् १९१० के आस-पासकी बात है। इसके बाद वह बापूके पास फिर कभी नही लौटे। हा, अब मृत्युने उन्हे मिला दिया है।

दक्षिण अफ्रीकाके सघर्षके प्रारभिक दिनोमे हरिलालभाई बापूके सर्वोत्तम सहकारी थे। उस समय वह अपनी युवावस्थामे थे और सब प्रकारकी यत्रणाओको प्रसन्न मनसे सहन करते थे। दक्षिण अफ्रीकाका कारावास जितना कठोर होता था उतना यहाका नही है। वहाके दो सप्ताहका कारावास यहा-के तीन महीनेके कारावासके बराबर था। वहा एक महीनेकी सजा एक बडा कठोर दण्ड माना जाता था। तीन महीनेका कारावास तो वहाके

उपद्रवियोके सरदारो और अभ्यस्त अपराधियोको दिया जाता था और छ महीनेका दण्ड बर्बरतापूर्ण माना जाता था तथा केवल इने-गिने अपराधियोके लिए सुरक्षित था। कारागारोके भीतरकी अवस्था तो बडी ही भयकर होती थी, हमारे यहाकी 'सी' श्रेणीकी दुर्दशासे कही दयनीय, और अच्छे-से-अच्छे स्वास्थ्यको भी नष्ट कर देती थी। वहा दया नामकी तो कोई वस्तु ही नही थी और यहा वातावरणकी जो अनुकूलता दिखाई देती थी उसका वहा पूर्ण अभाव था। सभवत वहाकी यत्रणा इतनी कडी थी जितनी यहा आरभमे क्राति-कारियोको भोगनी पडी थी। हरिलालभाई छ-छ महीनेके लिए दो बार जेल हो आए थे और बाल्य कालमे भी मुझे उनका वियोग बडा लबा और दु खदाई प्रतीत हुआ था। दक्षिण अफ्रीकाके एक-एक भारतीय बच्चेको पता चल गया था कि जेलमे उतने बडोको कितनी कठोर यत्रणा भुगतनी पडती है।

दक्षिण अफ्रीकामे हरिलालभाईकी वीरताकी जो अतिम बात मुझे याद है वह उस समयकी है जब वह एक सत्याग्रहीके रूपमे दडित होकर जेल जा रहे थे और फिनिक्सके स्टेशनपर उन्हें बडी

हृदयस्पर्शी विदा दी गई थी। तब वह सुन्दर लगा करते थे और माग बीचसे काढते थे। ललाट पर उनके बालोके सुन्दर गोल-गोल गुच्छे लटकते रहते थे। जाते-जाते उन्होने मुझसे कहा, "हा, देवदास, तेरा लट्टू मै डर्बनसे भेजूँगा।" लट्टूकी तो मुझे याद नही, किन्तु इतना स्मरण है कि अगले दिन जब मेरी भाभी एक पत्रको पढते हुए आसू बहा रही थी, मै अपनी भतीजीके साथ बैठा-बैठा मिठाइया उडा रहा था।

वर्षो बाद जब हम भारतमे मिले तो वह बिलकुल बदल गए थे। बापूसे वह मनमे और शरीरसे बिलकुल अलग हो गए थे। उनके बार-बार समझानेके बाद भी दक्षिण अफ्रीका छोडकर भारत चले आए थे और यहा आकर उन्होने बापूके नाम एक लबा-चौडा पत्र लिखा था। उसे लिखा तो उन्होने प्रकाशित करानेके लिए ही था, किंतु वह ऐसा करनेके लिए कभी पूरा साहस नही बटोर सके। फिर भी उन्होने उस पत्रको काफी लोगोके पास भेज दिया था और एक प्रति बापूको भी भेजी थी। उसमे बापूकी मुख्यत इस बातके लिए निदा की गई थी कि वह सबधियो और मित्रोके लडके-लडकियोंके

लिए स्वय अपने बच्चोके हितकी अवहेलना करते है, किंतु उस पत्रमे उनके आरोपोकी अनेक दुर्बलताए स्पष्ट हो गई और मुझे विश्वास है कि इसी कमीके कारण उन्होने इस सम्बन्धमे और आगे न बढनेका निश्चय किया। फिर भी वह उनके जीवन और पारिवारिक सबधोपर प्रभाव डालनेवाली एक विशेष घटना थी।

वह सदा अपने ही विचारोपर हठपूर्वक अडे रहते थे। वह बापूका आदर करते थे और परिवारवालो तथा मित्रोके अतिरिक्त औरोके सामने उनका बलपूर्वक समर्थन करते थे। बा के लिए उनके हृदयमे बडी श्रद्धा थी और भाई उन्हे अच्छे लगते थे। फिर भी निरतर विरोध करते रहनेमें मानो उन्हे आनद आता था। हम भाइयो और मित्रोको वह प्यारसे 'पाखडी' कहा करते थे और उनका मत था कि हम और कई अन्य लोग दिखावा तो बहुत करते है, किंतु वास्तवमे न तो बापूकी सेवा करते है, न अनुकरण।

सन् १९२० मे जब शीत ज्वरकी महामारी फैलनेपर उनकी पत्नीका देहात हो गया तो वह और भी अधिक स्वतत्र और स्वच्छद हो गए।

उसके बादमे वह सदा एक खानाबदोश का-सा जीवन व्यतीत करते रहे। शराबकी लतने उनमे अब जड जमाली थी। जब कभी बापूने उनकी इस आदतको छुडानेकी चेष्टा की तो उन्होने इस कार्यमे सच्चे हृदयके साथ योग दिया, किंतु सफलता कभी नही मिली। सच पूछिए तो उनके संबंधमे दूसरोंके सफल होनेकी कोई आशा ही नही थी। वह बडे दृढ विचारोके व्यक्ति थे और जो लोग उन्हे धर्म और कर्त्तव्यके लंबे-लंबे उपदेश दिया करते थे वे उन्हे फूटी आखो भी नही सुहाते थे। नीतिके वचनोंको वह पाखंड समझते थे और दूसरोके आचार-व्यवहारमे उन्हे साधारणत स्वार्थकी दुर्गन्ध आया करती थी। मेरे कहने-सुननेका उनपर कुछ प्रभाव पडेगा, इसकी बिल्कुल भी संभावना नही थी, फिर भी—और नही तो केवल बा की खातिर—मैने भी अपने अन्य भाइयोकी तरह उन्हे राहपर लानेकी चेष्टा की। हमारे लिए एक बडे दुर्भाग्यकी बात यह थी कि वह हम सबमे बडे थे। इसलिए स्वभावत वह हम सबमे श्रेष्ठ थे और उन्होने हमारा लालन-पालन भी किया था। एक बार उन्होने मुझे दक्षिण अफ्रीकामे मूगफली चुराते पकड लिया था। बापू हमे मूग-

फली खानेके लिए प्रोत्साहित करते रहते थे और अक्सर मेरी जेब मूगफलियोसे भरी रहती थी। एक बार हरिलालभाई मेरे पीछे पड गए। जैसे ही मैने मूगफलीके बोरेमे हाथ डाला, वैसे ही वे दरवाजा खोलकर भीतर आ गए और मेरा हाथ पकडकर अपनी नाराजी जताने लगे। दरवाजेके पीछे छिपे-छिपे वह यही इन्तजार कर रहे थे कि कब मूगफलियोकी खडखडाहट हो और कब वह आकर मुझे पकडे। पच्चीस वर्ष बाद जब मूगफलीके इसी चोरने उन्हे एमिल जोलाकी 'शराब' पुस्तक भेट की तो उन्होने नफरतमे मुँह सिकोडकर कहा, "अरे भाई, मुझे क्या दिखाता है ? ऐसी पुस्तक तो मै खुद लिख सकता हू।"

दुर्भाग्यवश दूसरोको भी उनके साथ मेरी ही तरह घोर निराशाका सामना करना पडा। वह छूटते ही कह देते थे, "तुम अपना काम देखो, मैं अपना देखता हू।" उनके जीवनके अतिम बीस वर्ष सबसे अधिक दु खपूर्ण थे। अतिशय मद्यपानने उनकी बुद्धि नही तो कम-से-कम उनकी अतरात्माको अवश्य ही धूमिल बना दिया था और वह अपने माता-पिता, भाइयो, बच्चो तथा मित्रोको ठेस-पर-ठेस पहुचाते रहते थे। उन्होने मुसलमान बननेका

भी स्वाग किया था। यह काम उन्होने केवल लोगोको स्तंभित करनेके उद्देश्यसे किया था, किंतु उसके फलस्वरूप कई उलझने उत्पन्न हो गई और जिन लोगोने उनके धर्म-परिवर्तनका समर्थन और गुणगान किया और उस घटनासे हर तरहका स्वार्थ साधना चाहा, उनके मस्तकपर एक बडे कलकका टीका लग गया। उन्ही दिनो उनके मुस्लिम जीवनके सबधमे कितनी ही अप्रिय कथाए कही जाने लगी। इस अपमानकी पीडा बा के लिए असह्य थी। एक दिन दिल्लीमे मेरे पास बैठी-बैठी आप-ही-आप वह इस दु खको रो रही थी। उनके उद्गार इतने करुण और हृदय-बेधी थे कि मैने उन्हे लिपि-बद्ध कर लिया और उसके बाद वे 'माका अपने पुत्रको खुला पत्र'[१] के नामसे देशके प्राय सभी दैनिक और साप्ताहिक पत्रोमे सन् १९३६ के सितम्बर-अक्तूबर महीनेमे प्रकाशित हुए। हृदयके उद्गारोका इतना अकृत्रिम और सरल प्रवाह मैने कभी नही देखा। जो थोडे बहुत मुसलमान हरिलालभाईके धर्म-परिवर्तनसे लाभ उठाना चाहते थे उन्हे अपनी मूर्खता और भूलका ज्ञान हुआ और साथ-ही-साथ

---

[१] यह पूरा पत्र परिशिष्टमें पृष्ठ ४४ पर देखिए।

उन्हे यह भी पता चल गया कि वे अपने धर्म पर भी कलकका टीका लगा रहे है। हरिलालभाईने भी फौरन अपना बढा हुआ कदम वापस उठा लिया।

भारतमे रेलसे जितना बापू घूमे होगे उतना ही शायद हरिलालभाई भी। वह एक जगहसे दूसरी जगह मानो उडते फिरते थे और सभी जगह मित्र-गण ही उनकी देखभाल करते थे। यदि हम भिन्न-भिन्न जातियो और सप्रदायोके उन लोगोकी गणना करे जिन्होने सौहार्दके साथ हरिलालभाईकी देख-भाल कर हमे कृतज्ञताका ऋणी बनाया है तो उनकी एक पूरी सेना-की-सेना खडी हो सकती है। उनके मनमौजीपनके बावजूद लोगोने कभी उनसे स्नेह करना नही छोडा। उनमे एक ऐसी चीज थी जो लोगोको बरबस अपनी ओर खीच लेती थी और जिसके कारण वे उनके दोषोको भूल जाते थे। वह सदा अपना सिर ऊचा रखते और उन्होने कभी किसी-को क्षति पहुचानेकी हृदयसे आकाक्षा नही की। उनकी एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि वह जिस मार्गपर चलते थे और जिसको वह विचारकी स्वत-त्रता कहकर पुकारते थे उसके कटकोका सामना करनेके लिए वह दृढतापूर्वक तत्पर रहते थे। इस

ससारमे ऐसे लोग कम मिलेगे जो थोडे समयके लिए भी ऐसा निराश्रय और निराहार जीवन बिता सके, जैसा कि भाई हरिलालने अपने लिए स्वेच्छासे चुना था। कई-कई दिनोतक उनकी जेबमे एक कौडी भी नही होती थी और वह चीथडे लपेटे दर-दर भटकनेवाले भिखारियो जैसा जीवन बिताते थे। यह सत्य है कि बुरे लोग उनकी तलाशमे रहते और उनसे अपनी स्वार्थ-सिद्धिका काम लेते थे, किंतु इस प्रकार एक पूर्ण अनाथका जीवन व्यतीत करते हुए ही उन्हे समाजकी निम्नतम श्रेणीमे कुछ ऐसे श्रेष्ठतम मानव मिले, जिन्होने उनकी सहायता की और उन्हे ढाढस बधाया।

कभी-कभी वह कुछ समयके लिए अपने कुटुबियो और मित्रोके साथ भी रह लेते थे, किंतु केवल रियायतके विचारमे और शायद स्वास्थ्य-लाभके लिए। उनका पुत्र काति, जिसमे बापूकी प्रतिभा दिखाई देती है और जो डाक्टर है, सदा पिताकी सेवाका अवसर प्राप्त करनेकी ताकमे रहता था और उसे इस कार्यमे औरोसे अधिक सफलता भी मिलती थी। पिछले साल वह हरिलालभाईको कई महीनो अपने पास रखने तकमे समर्थ हो सका

था और उसने और उसकी पत्नीने एक सच्चे पुत्र और एक सच्ची बधूकी भाति उनकी सेवा की थी। वह एक बडा ही भावुक लडका है और वह अपने हृदयपर शोकका भार मूक भावसे तथा मर्यादा-के साथ वहन करता आया है।

हरिलालभाई बहुत ही कम पढते थे, पर जो कुछ भी पढते थे उसका चयन बडी सावधानीके साथ करते थे। एक पुस्तककी चर्चा तो वह सदा सम्मान-सहित और बडे सतोपसे किया करते थे--वह था भगवद्गीतापर लोकमान्य तिलकका प्रसिद्ध ग्रथ 'गीता-रहस्य'। इस पुस्तककी एक प्रति वह सदा अपने साथ रखते थे और जब उनके पास पहननेको कमीज भी नही होती थी तब भी वह उसे अपने-से अलग नही होने देते थे। यदि 'गीता-रहस्य'की वह प्रति कभी मुझे मिल सकी तो उसे भी मैं अपने पास ऐसी अन्य निधियोकी भाति जतनसे रखूगा।[1]

---

[1]इस लेखके छपनेके बाद 'गीता-रहस्य'की वह प्रति श्री भवानी-दयाल सन्यासी, प्रवासी भवन, अजमेरकी ओरसे प्राप्त हो गई।

परिशिष्ट

मांका अपने पुत्रको खुला पत्र[1]

प्रिय पुत्र हरिलाल,

मैने सुना है कि हाल हीमे तुमको मद्रासमे आधी रातके समय पुलिसके सिपाहीने शराबके नशेमे खुले मैदान असभ्य आचरण करते देखा और गिरफ्तार कर लिया। दूसरे दिन तुमको मजिस्ट्रेटोके सामने पेश किया गया और उन्होने तुमपर एक रुपया जुरमाना कर दिया। निस्सदेह वे भले आदमी थे, जो तुम्हारे साथ उन्होने इतना नरमाईका व्यवहार किया। तुमको इस प्रकार केवल नाममात्रकी सजा देनेमे मजिस्ट्रेटोने भी तुम्हारे पिताका खयाल रक्खा। लेकिन जबसे मैने इस घटनाका हाल सुना है, मेरा दिल बहुत ही दुखी हो रहा है। मुझे नही मालूम कि उस रातको तुम अकेले थे या तुम्हारे कुछ सगी-साथी भी तुम्हारे साथ थे। लेकिन जो हो, तुमने बडा अनुचित काम किया। मेरी समझमे नही आता कि मै तुम्हे क्या कहू। वर्षोसे मै तुमको समझाती आ रही हू कि तुमको अपनेपर काबू रखना चाहिए, पर तुम तो दिन-पर-दिन बिगडते ही जा रहे हो। अब तो तुमने मेरा जीवन ही असह्य बना दिया है। जरा सोचो तो कि तुम इस बुढापेमे अपने माता-पिताको कितना कष्ट पहुचा रहे हो। तुम्हारे पिता किसीको कुछ भी नही कहते, पर मै जानती हू कि तुम जो चोट उन्हे पहुचा रहे हो उससे उनका दिल टूक-टूक हुआ जा रहा है। तुम हमारी भावनाओको बार-बार धक्का देकर बडा

---

[1] पृष्ठ ४० देखिए।

पाप कर रहे हो। हमारे पुत्र होकर भी वास्तवमे तुम दुश्मनका-सा व्यवहार कर रहे हो। तुमने तो हया-शरम सबको ताकपर रख दिया है। मैने मुना है कि इधर अपनी आवारागर्दीमे तुम अपने महान् पिताकी आलोचना करने और उनका मजाक उडाने लगे हो। तुम जैसे बुद्धिमान लडकेसे ऐसी उम्मीद नही की जाती थी। तुम महसूस नही करते कि अपने पिताकी निंदा करके तुम अपनेको ही जलील करते हो। उनके दिलमे तुम्हारे लिए सिवा प्रेमके और कुछ नही है। तुम्हे पता है कि वे चरित्र-शुद्धिपर कितना जोर देते है, लेकिन तुमने उनकी सलाहपर कभी ध्यान नही दिया। फिर भी उन्होने तुम्हे अपने पास रखने, खिलाने-पिलाने, यहातक कि तुम्हारा पालन-पोषण करने तकके लिए इच्छा प्रकट की है, लकिन तुम तो हमेशा कृतघ्न हो। दुनियामे उनकी और भी बहुतसी जिम्मेदारिया है। इतनेसे ज्यादा तुम्हारे लिए वे और क्या कर सकते है? वे अपने भाग्यको ही कोस सकते है। परमात्माने उन्हे असीम इच्छाशक्ति दी है और इस दुनियामे अपने मिशनको पूरा करनेके लिए उन्हे जितनी उम्र चाहिए, भगवान करे उतनी उम्र उन्हे प्राप्त हो। लेकिन मै तो एक कमजोर बूढी औरत हू और तुम जो यह मानसिक व्यथा मुझे दे रहे हो वह मुझसे बर्दाश्त नही होती। तुम्हारे पिताके पास रोजाना तुम्हारे आचरणकी शिकायतोके पत्र आ रहे है। उन्हे यह सब कडवी घूट पीनी पड रही है। लेकिन तुमने मेरे लिए तो मुह छिपानेको भी जगह नही छोडी। शर्मके मारे मै परिचितो या अपरिचितोमे उठने-बैठने लायक तक नही रही। तुम्हारे पिता तुम्हे हमेशा क्षमा कर देते है, लेकिन याद रखो, परमेश्वर तुम्हे कभी क्षमा नही करेगे।

मद्रासमे तुम एक प्रमुख और सम्माननीय व्यक्तिके मेहमान थे, परन्तु तुमने बेहूदा व्यवहार करके उनके आतिथ्यका नाजायज फायदा उठाया। इससे तुम्हारे मेजबानको कितनी परेशानी हुई होगी! प्रतिदिन

सबेरे उठते ही मैं यह सोचकर काप जाती हू कि पता नही, आजके अखबार-मे तुम्हारी जलालतकी क्या नई खबर आएगी। कई बार सोचती हू कि तुम जाने कहा रहते होगे, कहा सोते होगे और क्या खाते होगे। शायद तुम निषिद्ध भोजन भी करते हो। यह और ऐसी ही दूसरी बाते सोच-सोचकर मेरी राते पलकोमे निकल जाती है। तुमसे मिलनेकी प्राय इच्छा होती है, लेकिन क्या पता कि तुम कहा मिलोगे। तुम मेरे सबमे बडे लडके हो और अब करीब पचास बरसके हो। मुझे यह भी डर लगता रहता है कि मिलनेपर कही तुम मेरी बेइज्जती न कर बैठो।

मुझे मालूम नही कि तुमने अपने पूर्वजोके धर्मको क्यो छोड दिया है? वह तुम्हारी अपनी बात है, लेकिन सुना है कि तुम दूसरे भोले-भाले और मासूम आदमियोको भी अपना अनुसरण करनेको बहकाते फिरते हो। तुम अपनी कमियोको क्यो महसूस नही करते? धर्मके विषयमे तुम जानते ही क्या हो? तुम अपनी इस मानसिक अवस्थामे विवेक-बुद्धि नही रख सकते। लोगोको इस बातमे धोखा हो जाता है कि तुम एक महान् पिताके पुत्र हो। धर्मोपदेश देनेकी तुममे योग्यता नही है। तुम तो पैसेके गुलाम हो। क्योकि लोग तुम्हे पैसा देते है, तुम उनके गीत गाते हो। लेकिन तुम इस पैसेको शराबमे उडा देते हो और फिर मचपर खडे होकर लोगोके सामने लेक्चर देते हो! तुम अपनेको और अपनी आत्माको तबाह कर रहे हो। भविष्यमे यदि तुम्हारी यही करतूत रही तो तुम्हे कौडीके मोल भी कोई नही पूछेगा। इसमे मैं तुम्हे सलाह देती हू कि जरा रुको, सोचो और अपनी बेवकूफीसे बाज आओ। मुझे तुम्हारा धर्म-परिवर्तन बिलकुल पसन्द नही आया, लेकिन जब मैने पत्रोमे तुम्हारा वक्तव्य पढा कि तुमने अपनेको सुधारनेका निश्चय कर लिया है तो मेरा अन्त करण तुम्हारे धर्म-परिवर्तनकी बातपर भी यह सोचकर पुलकित हो उठा कि अब तुम ठीक जिन्दगी बसर करोगे, लेकिन तुमने तो उस उम्मीदपर भी

पानी फेर दिया। अभी बम्बईमे तुम्हारे कुछ पुराने मित्रो और सच्चे शुभेच्छुओने तुम्हे अक्सर पहलेसे भी बदतर हालतमे देखा। तुम्हे मालूम है कि तुम्हारी इन कारस्तानियोसे तुम्हारा पुत्र कितना दुखित है। तुम्हारी लडकिया और तुम्हारे दामाद सभी दुखके उस बोझको उठानेमे असमर्थ हो रहे है, जो तुम्हारी करतूतोसे उनपर लद रहा है।

× × ×

जिन मुसलमानोने हरिलालभाईके मुसलमान बनने और उनकी बादकी हरकतोमें रुचि दिखाई उनको सबोधन करते हुए बा ने लिखा :

आप लोगोके व्यवहारको मै नही समझ पाई। मै केवल उन्हीकी ओर सकेत कर रही हू, जो इन दिनो मेरे पुत्रकी वर्त्तमान गति-विधिमें सक्रिय भाग ले रहे है। मै जानती हू और मुझे इससे प्रसन्नता भी है कि हमारे चिर-परिचित मुसलमान मित्रो और विचारशील मुसलमानोने इस आकस्मिक घटनाकी निन्दा की है। आज मुझे उन उच्चमना डा० अन्सारीकी उपस्थितिका अभाव खल रहा है, जो मेरे पुत्र और आप लोगोको सच्ची सलाह देते, मगर उनके समान ही प्रभावशाली तथा उदार मुसलमान और भी है—यद्यपि मै उनसे परिचित नही हू—जो कि मुझे आशा है आपलोगोको उचित सलाह देगे। मेरे लडकेको सुधारनेकी अपेक्षा मै देखती हू कि इस तथाकथित धर्म-परिवर्त्तनसे वस्तुत उसकी बुरी आदते और भी बिगड गई है। आपको चाहिए कि आप उसको उसकी बुरी आदतोके लिए खरी-खरी सुनावे और उसको उल्टे रास्तेसे हटावे। कुछ लोगोने तो मेरे लडके को 'मौलवी' तक कहना शुरू कर दिया है। क्या यह उचित है ? क्या आपका धर्म शराबियोको 'मौलवी' कहनेका समर्थन करता है ? मद्रासमे उसके दुराचरणके बावजूद बहुतसे मुसलमान उसको स्टेशनपर हार्दिक बिदाई देने आए। मेरी समझमे नही आता कि उसको इस प्रकार बढावा देनेमे आप लोगोको क्या खुशी होती है ! यदि वास्तवमे

आप उसे अपना भाई मानते है तो आप कभी भी वैसा नही करेंगे, जैसा कि कर रहे है, क्योकि आपका रवैया उसके लिए फायदेमन्द नही है । लेकिन यदि आप केवल हमारी फजीहत करना चाहते है तो मुझे आपसे कुछ भी नही कहना है । जो दीखे, करे । लेकिन एक दुखिया माकी कमजोर आवाज शायद आपमेसे उन लोगोकी अन्तरात्माको जगा दे जो आपपर असर डाल सकते है । मेरा फर्ज है कि मै वह बात आपसे भी कह दू जो मै अपन पुत्रसे कहती रहती हू भगवानकी नजरोमे आप सही काम नही कर रहे है ।[1]

[1] सितम्बर-अक्तूबर १९३६ के प्राय सभी पत्रोमें प्रकाशित